Volume 1; Issue 1;
Oct-Dec. 2024

E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika

संस्कृति-संवाहिका

Peer Review Indexed Refreed Journal

Quarterly Journal

Editor-in-Chief

Dr. Ashwini Devi

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

ISSN: 3048-6742 (Online)
https://sanskritisamvahika.in
Volume 1; Issue 1; May 2024; Page No. 8-15
Peer Review, Indexed and Refreed Journal

वाल्मीकीय रामायण में अनुस्यूत गांधर्वकला

डॉ सौम्या कृष्ण
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज
Email: saumya02krishna@gmail.com

सारांशः महर्षि वाल्मीकि एक सांस्कृतिक कवि हैं। आपने न केवल समाज के सामने रामवत् आदर्श व्यक्तित्व की स्थापना कर लौकिक पुरूष का मार्ग प्रशस्त किया है वरन् अपने इस कालजयी ग्रंथ के माध्यम से भारतीय समृद्ध ज्ञान, कला व साहित्य का भी परिचय दिया है। वाल्मीकीय रामायण में प्रतिबिंबित गान्धर्वकला को जानने से पूर्व कला शब्द की चर्चा आवश्यक है। कला शब्द का व्युत्पत्ति कल् धातु में कच् व टाप् प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है जिसका शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु का छोटा खण्ड, टुकड़ा, कुशलता, मेधाविता। किन्तु कला का यह अर्थ नितान्त संज्ञानात्मक है। भारतीय सभ्यता के आरम्भ में कला के लिए 'शिल्प' शब्द का प्रयोग मिलता है किन्तु नाट्यशास्त्र में कला से भिन्न स्थापित किया। गयारामायण कालीन समाज एवं संस्कृति में संगीत की समस्त विधाओं की पर्याप्त उन्नति हुई है। आज जो संगीत हमारे सामने है उसमें लौकिक एवं वैदिक परम्पराओं का मिश्रण पाया जाता है। अतः संगीत के विकास में वैदिक एवं लौकिक इन दोनों विधाओं का योगदान स्वीकार करना औचित्यपूर्ण है।

मुख्य शब्दः महर्षि वाल्मीकि, रामायण, अनुस्यूत गांधर्वकला

महर्षि वाल्मीकि एक सांस्कृतिक कवि हैं। आपने न केवल समाज के सामने रामवत् आदर्श व्यक्तित्व की स्थापना कर लौकिक पुरूष का मार्ग प्रशस्त किया है वरन् अपने इस कालजयी ग्रंथ के माध्यम से भारतीय समृद्ध ज्ञान, कला व साहित्य का भी परिचय दिया है। वाल्मीकीय रामायण में प्रतिबिंबित गान्धर्वकला को जानने से पूर्व कला शब्द की चर्चा आवश्यक है। कला शब्द का व्युत्पत्ति कल् धातु में कच् व टाप् प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है

जिसका शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु का छोटा खण्ड, टुकड़ा, कुशलता, मेधाविता।[1] किन्तु कला का यह अर्थ नितान्त संज्ञानात्मक है। भारतीय सभ्यता के आरम्भ में कला के लिए 'शिल्प' शब्द का प्रयोग मिलता है[2] किन्तु नाट्यशास्त्र में कला से भिन्न स्थापित किया गया– **न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विधा न सा कला।** अतः कला शिल्प से भिन्न है।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने कला शब्द की विशद् चर्चा करते हुए कहा कि "कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है।" और प्लेटो का ये सत्य ईश्वरीय सत्य का द्योतक है।[3] अरस्तु के अनुसार "कला अनुकरण है।"[4] यहाँ भी उसी सृष्टि के अनुकरण की बात की जाती है। क्रोचे का मानना है कि "कला बाह्य प्रभावों (पउचमतेपवद) की अभिव्यक्ति (मगचतमेपवद) है।[5] इसे और स्पष्ट करते हुए टालस्टॉय ने कहा ''अपने भावों को क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना कि उसे देखने या सुनने वाले में भी वे ही भाव जग जाएँ, कला है।"[6] वस्तुतः जब हमारी मौलिक वृत्तियों व सामाजिक वातावरण का सहारा लेकर कला रुपी लता बढ़ती है तो वह और भी सघन व मजबूत प्रभाव छोड़ती है। मानव के संस्कारजनित अनुभव व तत्कालीन सामाजिक जीवन के सूक्ष्म व प्रभावपूर्ण अनुभव से सहकृत कला मस्तिष्क पर अटूट प्रभाव डालती है। अतः यह कहना समीचिन होगा कि मानव अपने स्वभाविक परन्तु आन्तरिक भावों को समय–समय पर अभिव्यक्त करते हुए आनन्द का अनुभव करता है। उनकी प्रत्येक रचना आन्तरिक भावों का रूपाधान है। स्वत्व को प्रकट करने की प्रवृत्ति का प्रवाह मात्र है। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई अबोध बालक अनायास ही तरह तरह के करतब कर आह्लादित होता है। बस दोनों में फर्क इतना है कि कलाकारों को अनुभूति दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रगाढ़, सजग व संवेदनशील होती है। वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं कि ''मन के सूने प्रदेश को भावों से और लोक को मूर्त रूपों से भरना यही कलात्मक सृष्टि है। कल्पना के लोक में नए–नए भावों की सृष्टि करना राष्ट्रीय चिन्तन का उत्थान–पक्ष है। उसी जगत् में पुराणकारों ने बहुमुखी गाथाओं के भव्य प्रसाद खड़े किए। साहित्यकारों ने नवीन आदर्श और चरित्र के रूपक बाँधे और इतिहास में भी साहित्य का सत्य मूर्तिमान् हुआ। पुराण और साहित्य जब कल्पना के प्रदेश में भावों के नये ठाठ बनाते हैं और इतिहास का सत्य उनमें बसता है, तभी तीनों का वरदान पाकर कला समाज के जीवन को अनेक मूर्त रूपों में भर देती है। स्थापत्य, शिल्प, चित्र, नाट्य, संगीत इनके अनेक रूप–सुधर्मा सभा में देवों की तरह प्रत्यक्ष दर्शन देने लगते हैं, और उनके समवाय से कला का

---

[1] http://scl.samsaadhanii.in/cgi-bin/scl/MT/dict_options.cgi?word=%E0%A4%95%E0%A4%B2%E0%A4%BE&outencoding=DEV वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश

[2] कलाकौशल्यादिकर्मः, शिल्प, कला

[3] द मेकिंग आफ लिटरेचर, स्काट जेम्स, पृ0–37–46

[4] अरस्तू का काव्य शास्त्र, डॉ0 नागेन्द्र, पृ0–6

[5] Aesthtic Croce, London, page 13

[6] What is out, Toltoy, page 123

भवन जगमगाने लगता है।''[7] इस क्रम में उन्होंने कला की उत्पत्ति से अनुभूति तक तीन सोपान स्वीकार किये हैं– पहला अमूर्त भावों की सृष्टि, दूसरा अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करना और तीसरा – लोक में कला की अभिज्ञता और रसानुभव की क्षमता की उत्पत्ति और प्रचार करना।[8]

कलाकार की यही अनुभूति की अभिव्यक्ति जब गेय बन कर, वाद्य एवं नृत्य का साहचर्य प्राप्त करती है, तब कल्पनायें और सजीव हो उठती है। ललितकलाओं में गीत, वाद्य एवं नृत्य का त्रिवेणी संगम ही गांधर्वकला या विद्या शब्द से द्योतित है।[9] गांधर्वविद्या संगीत विज्ञान है।[10] गीतगोविन्द में संगीत के पर्याय के रूप मे गंधर्व शब्द का प्रयोग किया गया– **यद्गन्धर्वकलासु कौशलम्।12/28** गांधर्वकला की उत्पत्ति वेदों से मानी गयी है। वैदिक ऋचाओं का सस्वर पाठ करने की प्रणाली वैदिक युग में प्रचलित थी, सम्पूर्ण सामवेद संगीत से भरा पड़ा है, सामवेदीय ऋचायें 'छन्दसिका' कहलायी। सामान्य मान्यता है कि सामगान के शुद्धोच्चारण तथा कठोर नियमावलियों के परिणामस्वरूप लौकिक संगीत का प्रादुर्भाव हुआ।[11] वाल्मीकीय रामायण में भी तत्कालीन कला का व्यापक विस्तार मिलता है। वैदिक युग में यह कला मुख्यतः यज्ञ का अंग बनी हुई थी, पुरोहितों द्वारा यज्ञादि अनुष्ठानों तक ही सीमित थी। प्रसिद्ध संगीताचार्य श्री शिवशरण के अनुसार ''ऋग्वेद का गान एक स्वर से होता है, जिसे 'आर्थिक' कहते हैं। यजुर्वेद का गायन दो स्वरों से होता है, जिसे 'गायिका' कहा जाता है। सामवेद का गायन तीन स्वरों से होता है, जिसे 'सामिक' कहते है। यहाँ एक स्वर गायन अर्थ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित है। आधुनिक दृष्टिकोण से ऋग्वेद तीन स्वर, यजुर्वेद पांच स्वर एवं सामवेद सात स्वरों से गाया जाता है।''[12] रामायण काल में भी यज्ञों के अनुष्ठान के लिए वैदिक परम्परा का ही अनुकरण हो रहा था। महाराज दशरथ द्वारा यजित अश्वमेध यज्ञ में मधुर एवं मनोरम सामगान के लय में गाये हुये आहान मंत्रों द्वारा देवताओं का आहवाह्न करके होताओं द्वारा तत्सम्बन्धी देवताओं को उनके योग्य हविष्य भाग समर्पित किये जाते थे–

गतिभिर्मुधुरैः स्त्रिग्धैर्मन्त्राहवनैर्यथार्हतः।
होतारो ददुरावाह्य हविर्भामान् दिवौकसाम्।।[13]

---

[7] कला और संस्कृति, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ0–196

[8] कला और संस्कृति, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ0–196

[9] भारतीय साहित्य शास्त्र, ले0–बलदेव उपाध्याय, पृ0–488

[10] Gandharvavidyā—the science of music.
Gandharvavidyā is a Sanskrit compound consisting of the terms *gandharva* and *vidyā*. DDSA: The practical Sanskrit-English dictionary
gandharvavidyā—f (S) *gandharvavēda* m (S) The science of song, or of music vocal or instrumental. DDSA: The Molesworth Marathi and English Dictionary

[11] संगीत शास्त्र मीमांसा–श्री जगदीश नारायण पाठक, पृष्ठ–2

[12] संगीत निबन्धावली–श्री शिवशरण, पृ0 10

[13] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 14.9, गीता प्रेस, गोरखपुर

भारत की आर्येतर जातियों में संगीत, नृत्यादि के प्रति अतिशय अभिरूचि थी। इनमें गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं का जीवन कलात्मक अथवा कला के प्रति समर्पित था। ये जातियाँ गान–नृत्य एवं वाद्य कला में निपुण होती थी। वस्तुतः गन्धर्व कुशल गायक एवं वादक होने के साथ–साथ मनोहर रूपाकृति वाले भी होते थे। राजकुमारों के जन्म के समय गन्धवों द्वारा गाये गये मधुर गीतों का उल्लेख बालकाण्ड में मिलता है–

जगुःकलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।।[14]

संभवतः इन गंधर्व जातियों के कर्तव्यकर्म के आधार पर भी संगीत को गांधर्वकला के नाम से अभिहीत किया गया है।

अशोकवाटिका में नृत्य व गीत कला में निपुण अप्सराएं और नागकन्यायें किन्नरियों के साथ मिलकर नृत्य करती थी, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। किन्नरों को संगीत कला में सर्वाधिक सुशिक्षित माना गया है। उत्तराकाण्ड के सैंतीसवें सर्ग में राजमहल के वान्दीजनों की तुलना किन्नरों से की गयी है कि उनके कण्ठ बड़े मधुर थे, वे संगीत कला में किन्नरों के समान सुशिक्षित थे–

ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किन्नरा इव शिक्षिताः।
तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथावत् सम्प्रहर्षिणः।।[15]

नृत्य–कला में पारंगत अप्सरायें महान चरित्रों का यशोगान करतीं थी। चारणगण देवताओं के गुणों का गान करते थे। इसके अतिरिक्त स्तुति एवं पुराणों के जानकार सूत तथा वाद्य निपुण वैतालिक तथा उत्तम वंश परम्परा का श्रवण कराने वाले मागधों का उल्लेख प्राप्त होता है–

सूताः परमसंस्कारा मागधाश्चोत्तमश्रुताः।
गायकाः श्रुतिशीलाश्च निगदन्तः पृथक्पृथक्।।[16]

वस्तुतः रामायण में संगीतशास्त्र के लिए 'गान्धर्व' या 'गन्धर्वतत्व' शब्द का प्रयोग मिलता है–

तै तु गान्धर्वतत्त्वज्ञै स्थानमूर्च्छनकोविदौ।[17]

गान्धर्व (गन्धर्व विद्या) में स्वर, ताल एवं पद इन अंगों का समावेश होता है, अतः इसी आधार पर संगीत के तीन भेद किये गये हैं–स्वर संगीत, वर्ण संगीत व ताल संगीत। **स्वर संगीत** से तात्पर्य उस विद्या से है जिसमें स्वर की प्राधान्यता हो। इसमें आलाप मुख्य होता है। सामवेदीय संगीत में उदात्त, अनुदात्त व स्वरित के क्रम से स्वरों का विशेष महत्त्व है। इसके साथ ही स्थान, नाद, श्रुति, आलाप, तान, मींड व मूर्छना आदि का भी महत्त्व है। 'स्थान' शब्द मन्द, मध्यम व तारुप त्रिविध स्वरों की उत्पत्ति है। शाण्डिल्य के अनुसार हृदय की

[14] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 18.17, गीता प्रेस, गोरखपुर
[15] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 37.3, गीता प्रेस, गोरखपुर
[16] वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 65.2 गीता प्रेस, गोरखपुर
[17] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 4.10, गीता प्रेस, गोरखपुर

ग्रन्थि से ऊपर और कपोल फल से नीचे जो प्राणों के संचार का स्थान है, उसी को स्थान कहते हैं। जहां स्वर पूर्ण होते हैं, उस स्थान को मूर्छना कहते है। लव व कुश दोनो ही कुमार गान्धर्व विद्या के तत्त्वज्ञ, स्थान व मूर्छना के जानकार, मधुर स्वर से सम्पन्न थे–

तौ चापि मधुरं रक्तं स्वचिन्तायतनिः स्वनम्।[18]
तंत्रीलयसमायुक्त त्रिस्थान करणान्वितम्।
संस्कृतं लक्षणोपेतं समतालसमन्वितम्।।[19]

वर्णप्रधान संगीत **वर्ण संगीत** कहलाया। रामायण में वर्ण संगीत का परिचय अनुष्टुप छन्द के माध्यम से मिलता है। वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण, छन्द व संगीतशास्त्र के लक्षणों से सम्पन्न इस गेय काव्य के सभी अक्षर व वाक्य सच्ची घटना का प्रतिपादन करते हैं तथा आदि काल में घटित वृतान्त का यर्थाथ परिचय देते है। इसी प्रकार वाद्यों पर अथवा हाथ पर ताल दे–देकर जो गायन प्रस्तुत किया जाय वह **ताल संगीत** है। वान्दीजनों व सूतों के स्तुतिवाचन के मध्य पाणिवादकों द्वारा हाथों पर ताल गति के अनुसार ताल देकर राजाओं के बीते हुये अद्भुत कर्मों का बखान किया जाता था। वाद्यों पर ताल ठोकने के लिए करतल एवं स्वास्तिक आदि का प्रयोग किया जाता था।

शास्त्रीय संगीत को व्यवहारिक दृष्टि से भी दो भागों में बांटा गया है–मार्गी संगीत व देशी संगीत। शार्ङ्गदेव के अनुसार ''जो अनादि सम्प्रदाय है, गन्धर्वों द्वारा जिसका प्रयोग किया गया तथा जो मोक्ष का कारण है व मार्गी संगीत है।'' इसके सृष्टा ईश्वर है तथा यह परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग है। मार्गी संगीत शब्द प्रधान तथा कठोर नियमों से आबद्ध एवं अपरिवर्तिनशील है। लव व कुश मार्गी संगीत में ही राम कथा को सभा में प्रस्तुत करते हैं। वे दोनों महाकाव्य पढ़ने और गाने में मधुर, द्रुत, मध्य व विलम्बित इन तीनों गतियों से अन्वित षड्ज आदि सातों स्वरों से युक्त, वीणा बजाकर स्वर और ताल के साथ गाने योग्य तथा श्रृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीर आदि सभी रसों से अनुप्राणित है। वहीं जनमत के रंजन के लिए जो संगीत निबद्ध हो उसे देशी संगीत कहते हैं। इसमें स्वर की प्रधानता होती है तथा मर्यादित नियमों से युक्त एवं परिवर्तनशील होता है। रामायण में भी लव व कुश ने वीणा के लय के साथ मन के अनुकूल तार एवं मधुर स्वरों में राग अलापते हुये रामायण काव्य का ऐसा गान प्रस्तुत किया कि उसे सुनकर समस्त श्रोता रोमाञ्चित हो उठे तथा उनके मन और आत्मा में आनन्द की तरंगे उठने लगी।

रणभूमि में भी संगीत का प्रयोग प्राप्त होता है, जिसे 'युद्ध गांधर्व' कहा गया। युद्ध के आदि, मध्य एवं अन्त में प्रयुक्त धौंस, नगाड़े, शंख इत्यादि का उल्लेख मिलता है। युद्ध काण्ड में युद्ध गान्धर्व का पर्याप्त उल्लेख मिलता है, मृत्यु के विकट अट्टाहास तथा वीभत्स वातावरण में सैनिकों के मस्तिष्क को

---

[18] वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 4.33, गीता प्रेस, गोरखपुर

[19] वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड 71.15, गीता प्रेस, गोरखपुर

संतुलित रखने के लिए युद्ध में सोने के डंडों से एक साथ बहुत से धौंसे बजाये जाते थे, साथ ही भयानक राक्षसों के मुख की वायु से पूरित कर गम्भीर घोष वाले शंख बजाये जाते थे। इस प्रकार के संगीत की वीरोत्तेजक ध्वनि को सुनकर सैनिक उत्साह से भर जाते और युद्ध के लिए आ डटते थे।

संगीत के विकास में प्रकृति भी सहचरी रही है। प्रसिद्ध संगीताचार्य दामोदर पंडित के अनुसार स्वरों की उत्पत्ति पशुपक्षियों से हुई है। उनका मानना है षड्ज मोर से, ऋषभ चातक से, गन्धार बकरे से, मध्यम काग से, पंचम कोकिल से, धैवत मेढ़क से तथा निषाद् स्वर का जन्म हाथी से हुआ है। अतः प्रकृति ने स्वयं हमें संगीत का दान दिया है। वाल्मीकि रामायण में भी प्रकृति की सहज कलाओं में संगीत का अनुभव होता है। शुकादि खग समूह की कूंज से मन तृप्त हो जाता है। वहीं हाथियों के चिग्घाड़ने, घोड़े के हिनहिनाने, वेगवान् वानरों के निनाद से पृथ्वी, आकाश और समुद्र निनादित हो उठते हैं–

गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां ह्रेषितैरपि।
रथानां नेमिनिर्घोषै रक्षसां वदन स्वनैः।।[20]

इसके अतिरिक्त प्रकृति के बीच स्वच्छन्द विचरण करता हुआ मानव नदी की कल–कल ध्वनि, सागर की लहरों के कल्लोल, वायु की सनसनाहट, हवा के झोके में झूमते वृक्षों के स्वर इन सबने प्रायः मनुष्य को संगीत की ओर प्रेरित किया। विश्वमित्र ने दो नदियों के जल के संघर्ष से उत्पन्न तीव्र ध्वनि (कलकलाहट) को 'तुमुलध्वनि' कहा है।

रामायण युग में विभिन्न वाद्य कलाओं की उन्नति हुई। गीत के साथ–साथ ही वाद्य कला विकसित होती रही। वहाँ पर वाद्य अर्थ के लिए 'वादित्र' पद का प्रयोग मिलता है–

दिव्यदुन्दभिनिर्घोषोगौर्तवा दित्रानिः स्वनै।[21]

प्रमुख वाद्यों में मृदंग, भेरी, शंख, दुन्दुभि, वीणा, मड्डुक, विपंची, डिंडिम, पणव, आडम्बर आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन वाद्यों को इनके गुणों व कार्यशैली के आधार पर चार भागों में बांटा गया है–**तत, सुषिर, धन व अनवद्य।** तत–जिनमें स्वरों की उत्पत्ति तार के आन्दोलन से होती हो, जैसी वीणा व विपंची। दूसरा सुषिर, जिनमें स्वरोत्पत्ति वायु या फूंक मारने से होती है यथा तूर्य, शंख इत्यादि। धन, वे वाद्य है जिन पर काष्ठ अथवा धातुओं के आघात के फलस्वरूप ध्वनि उत्पन्न होती है, इसके उदाहरण धौंस, दुन्दुभि है। चौथे वे वाद्य है जिनके मुंह पर चमड़ा चढ़ा रहता है और उनमें स्वरोत्पत्ति हाथ या लकड़ी के आघात द्वारा की जाती है, अनवद्य कहलाते है। जैसे पटह, मड्डुक व मृदंग। इन वाद्यों से यह स्पष्ट होता है कि रामायण काल में वाद्यकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। स्त्रियां भी संगीत व नृत्य में पर्याप्त रूचि लेती थी। लंका नगरी में स्त्रियां

[20] वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड 42.40, गीता प्रेस, गोरखपुर

[21] वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर

अपने वाद्यों को प्रिय की भांति साथ लेकर सोती थीं–

काचिद् वीणां परिषृज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते।
महानदी प्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता।।[22]

निष्कर्षतः रामायण कालीन समाज एवं संस्कृति में संगीत की समस्त विधाओं की पर्याप्त उन्नति हुई है। आज जो संगीत हमारे सामने है उसमें लौकिक एवं वैदिक परम्पराओं का मिश्रण पाया जाता है। अतः संगीत के विकास में वैदिक एवं लौकिक इन दोनों विधाओं का योगदान स्वीकार करना औचित्यपूर्ण है।

[22] वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड 10.37, गीता प्रेस, गोरखपुर